प्रकाशन हेतु अनुमोदित

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय

एकल पीठ: माननीय न्यायाधीश संजय के. अग्रवाल

विविध अपील क्रमांक 334/2005

अपीलार्थी:	लोकनाथ
बनाम	
प्रत्यर्थी:	रुक्मणी बाई

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 की धारा 47(ग) के अधीन अपील

उपस्थिति:

अपीलार्थी की ओर से - विद्वान अधिवक्तागण श्री मनोज परांजपे एवं श्री विक्रम दीक्षित।

प्रत्यर्थी की ओर से - कोई नहीं, यद्यपि सूचना तामील हो चुकी है।

संजय के. अग्रवाल, न्यायाधीश

आदेश

(26.09.2013)

संजय के. अग्रवाल, न्यायाधीश

(1) संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 (संक्षेप में 'अधिनियम, 1890') की धारा 47(ग) के तहत इस न्यायालय के अपीलीय क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए, अपीलार्थी/पिता (लोकनाथ) ने व्यवहार न्यायाधीश, वर्ग-एक, बलौदा बाजार, जिला रायपुर द्वारा संरक्षक और प्रतिपाल्य प्रकरण क्रमांक 02/2004 (रुक्मणी बाई बनाम लोकनाथ) में अधिनियम, 1890 की धारा 25 के तहत आवेदन पर पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 10.02.2005,जिसके द्वारा लगभग ढाई वर्ष की आयु के अप्राप्तवय बालक पूनम प्रकाश की अभिरक्षा प्रदान की गई थी, को चुनौती देते हुए यह अपील प्रस्तुत की है।

(2) इस अपील के निराकरण के लिए आवश्यक तथ्य निम्नानुसार हैं:

(2.1) प्रत्यर्थी/माता (रुक्मणी बाई) ने पूनम प्रकाश की अभिरक्षा की मांग करते हुए अधिनियम, 1890 की धारा 25 के तहत एक आवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह कहा गया कि उसका विवाह वर्ष 1999 में लोकनाथ के साथ हुआ था और उन्हें एक पुत्र पूनम प्रकाश और एक पुत्री खिलेश्वरी की प्राप्ति हुई थी। यह भी अभिवचन किया गया कि अपीलार्थी/पिता पूनम प्रकाश की उचित देखभाल नहीं कर रहा था और अनुविभागीय अधिकारी, बिलाईगढ़ द्वारा जारी विधिक प्रक्रिया के बावजूद, पूनम प्रकाश को अनुविभागीय अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

(2.2) यह आरोप लगाया गया कि दहेज की मांग के कारण अपीलार्थी उसके साथ दुर्व्यवहार कर रहा था और अपीलार्थी द्वारा उसे ससुराल से निकाल दिया गया है, इसलिए वह अपने माता-पिता के साथ अपने मायके में अलग रह रही है। धारा 498-क के तहत कार्यवाही विचाराधीन है। चूंकि अपीलार्थी/पिता अपने प्रतिपाल्य (वार्ड) का उचित देख रेख नहीं कर रहा है और वह (माता) बालक के स्नेह और ममता से

वंचित है, इसलिए पूनम प्रकाश की अभिरक्षा उसे प्रदान की जाए।

(3) वर्तमान अपीलार्थी को सूचना तामील होने के बावजूद, उसने विचारण न्यायालय के समक्ष कोई जवाब दावा प्रस्तुत नहीं किया और इसलिए विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी को एकपक्षीय घोषित करते हुए कार्यवाही आगे बढ़ाई। अपीलार्थी ने न तो लिखित कथन दाखिल किया और न ही अपने मामले के समर्थन में कोई साक्ष्य प्रस्तुत किया।

(4) प्रत्यर्थी/माता ने विचारण न्यायालय के समक्ष अपना परीक्षण कराया और अन्य बातों के साथ-साथ यह कथन किया कि अपीलार्थी/पिता उसके पुत्र पूनम प्रकाश की उचित देखभाल नहीं कर रहा है और उसके विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 498-क के तहत कार्यवाही लंबित है, इसलिए वह प्रतिपाल्य की अभिरक्षा की हकदार है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

(5) विचारण न्यायालय ने अपने आक्षेपित आदेश दिनांक 10.02.2005 के माध्यम से अधिनियम, 1890 की धारा 25 के तहत आवेदन को मुख्य रूप से इस आधार पर स्वीकार कर लिया कि माता का साक्ष्य निर्विप्रकरण रहा है और अप्राप्तवय पूनम प्रकाश की देखभाल के लिए माता/प्रत्यर्थी की आवश्यकता है, और तदनुसार बालक की अभिरक्षा प्रत्यर्थी/माता को सौंपने का निर्देश दिया।

(6) अपीलार्थी/पिता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री परांजपे ने तर्क दिया कि चूंकि अप्राप्तवय पूनम प्रकाश ग्राम नोहरपाली, तहसील बिलाईगढ़, जिला रायपुर में निवास कर रहा था, अतः जिला न्यायालय, रायपुर को अधिनियम, 1890 की धारा 25 के तहत ऐसे किसी भी आवेदन पर विचार करने का क्षेत्राधिकार प्राप्त था, न कि बलौदा बाजार स्थित व्यवहार न्यायालय को। उन्होंने वैकल्पिक रूप से यह भी तर्क दिया कि विचारण न्यायालय इस बात पर विचार करने में विफल रहा है कि अप्राप्तवय बालक की अभिरक्षा के मामले में बालक का कल्याण सर्वोपरि होना चाहिए। विचारण न्यायालय बालक पूनम प्रकाश की अभिरक्षा प्रत्यर्थी/माता को देने का निर्देश देते समय बालक के कल्याण के इस पहलू पर विचार करने में विफल रहा है और इस प्रकार विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश निरस्त किए जाने योग्य है।

(7)मैंने अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता को सुना है, उपरोक्त तर्कों पर विचार किया है तथा विचारण न्यायालय के अभिलेख का अवलोकन किया है।

(8) अधिनियम, 1890 की धारा 7 संरक्षकता के संबंध में आदेश देने की न्यायालय की शक्ति का प्रावधान करती है। धारा 7 की उपधारा (1) यह प्रावधान करती है कि जहाँ न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि किसी अप्राप्तवय के कल्याण के लिए यह आवश्यक है कि उसके शरीर या संपत्ति या दोनों के संरक्षक की नियुक्ति का आदेश दिया जाए या किसी व्यक्ति को ऐसा संरक्षक घोषित किया जाए, तो न्यायालय तदनुसार आदेश दे सकता है।

(9) अधिनियम, 1890 की धारा 17 (1) एवं (2) और धारा 25 निम्नानुसार पठित हैं:

17. संरक्षक नियुक्त करने में न्यायालय द्वारा अवधारणीय बातें—

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

(1) अप्राप्तवय का संरक्षक नियुक्त या घोषित करने में इस धारा के उपबंधों के अधीन रहते हुए, न्यायालय उस विधि से संगत, जिसके अप्राप्तवय अधीन है, उस बात से मार्गदर्शित होगा, जो उन परिस्थितियों में अप्राप्तवय के कल्याण के लिए प्रतीत हो।

(2) यह अवधारित करने में कि अप्राप्तवय के लिए क्या कल्याणकर होगा, न्यायालय अप्राप्तवय की आयु, लिंग और धर्म, प्रस्थापित संरक्षक के शील और सामर्थ्य तथा अप्राप्तवय से रक्त संबंध में उसकी निकटता, मृत जनक की इच्छाओं को, यदि कोई हों, और अप्राप्तवय या उसकी संपत्ति से प्रस्थापित संरक्षक के किसी वर्तमान या पूर्वतम संबंधों को ध्यान में रखेगा।

25. प्रतिपाल्य की अभिरक्षा का संरक्षक का हक—

(1) यदि प्रतिपाल्य अपने शरीर के संरक्षक की अभिरक्षा को छोड़ देता है या उससे हटा दिया जाता है, तो, यदि न्यायालय इस राय का है कि प्रतिपाल्य के लिए यह कल्याणकर होगा कि वह संरक्षक की अभिरक्षा में लौट आए, तो वह उसके लौट आने के लिए आदेश कर सकेगा और उस आदेश का

प्रवर्तन कराने के प्रयोजन से प्रतिपाल्य को गिरफ्तार करा सकेगा और संरक्षक की अभिरक्षा में रखे जाने के लिए उसे परिदत्त करा सकेगा।

(2) प्रतिपाल्य की गिरफ्तारी के प्रयोजन से न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता, 1882 (1882 का 10) की धारा 100 द्वारा प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट को प्रदत्त शक्ति का प्रयोग कर सकेगा।

(3) ऐसे व्यक्ति के पास, जो उसका संरक्षक नहीं है, प्रतिपाल्य का अपने संरक्षक की इच्छा के विरुद्ध निवास, स्वतः संरक्षकता का पर्यवसान नहीं कर देता।

(10) इस प्रकार, अधिनियम, 1890 की धारा 25(1) सह पठित धारा 17 के उपबंधों के अवलोकन मात्र से एक बात स्पष्ट है कि अप्राप्तवय की अभिरक्षा के मामले में सर्वोपरि विचार 'अप्राप्तवय का कल्याण' है, न कि माता-पिता या रिश्तेदारों की स्थिति। धारा 7, 17 और 25 में प्रयुक्त शब्द 'कल्याण' का शाब्दिक अर्थ लगाया जाना चाहिए और इसे इसके व्यापक अर्थ में लिया जाना चाहिए।

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

(11) उच्चतम न्यायालय ने (2008) 7 एस .सी .सी 673 (**मौसमी मोइत्रा गांगुली बनाम जयंत गांगुली**) में यह माना है कि बालक का कल्याण और हित ही वह निर्णायक कारक है जो अभिरक्षा के प्रश्न को तय करता है, न कि माता-पिता के अधिकार। यह आगे भी अभिनिर्धारित किया गया कि बालक के कल्याण के प्रश्न पर प्रत्येक मामले के तथ्यों के संदर्भ में विचार किया जाना चाहिए और इस मुद्दे पर पूर्व में तय किए गए मामले बाध्यकारी न्याय दृष्टांत के रूप में विचार किए जाने के लिए उपयुक्त नहीं हो सकते हैं।

(12) अधिनियम, 1890 की धारा 17 के तहत, न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह प्रतिद्वंद्वी दावेदारों में से अधिक उपयुक्त व्यक्ति की तलाश करे। न्यायालय के लिए बालक के शारीरिक सुस्वास्थ्य के साथ-साथ उसका नैतिक और चारित्रिक कल्याण भी महत्वपूर्ण होना चाहिए। इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने 2011(3)सी.जी.एल.जे. 80 (डीबी) **(शैलेश खंडेलवाल बनाम मीनाक्षी खंडेलवाल)** के कंडिका 13 में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है...

"13. 1956 के अधिनियम की धारा 6 यह प्रावधान करती है कि एक हिंदू अप्राप्तवय का नैसर्गिक संरक्षक, लड़के या अविवाहित लड़की के मामले में, पिता है और उसके बाद माता; बशर्ते कि उस अप्राप्तवय की अभिरक्षा, जिसने पांच वर्ष की आयु पूरी नहीं की है, सामान्यतः माता के पास होगी। 1956 के अधिनियम की धारा 13 के अनुसार, न्यायालय द्वारा किसी व्यक्ति को हिंदू अप्राप्तवय के संरक्षक के रूप में नियुक्त या घोषित करने में, अप्राप्तवय का कल्याण ही सर्वोपरि विचार होगा। 1890 के अधिनियम की धारा 17 के तहत, न्यायालय का कर्तव्य है कि वह संरक्षकता के लिए प्रतिद्वंद्वी दावेदारों में से सबसे उपयुक्त व्यक्ति को नियुक्त करे, भले ही वह व्यक्ति व्यक्तिगत विधि के तहत किसी अन्य की तुलना में बालक की अभिरक्षा का हकदार हो। 1890 के अधिनियम की धारा 17(3) के अनुसार; यदि अप्राप्तवय अपनी सुविचारित प्राथमिकता व्यक्त करने के लिए पर्याप्त आयु का है, तो न्यायालय उस प्राथमिकता पर विचार कर सकता है। संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम की धारा 17 का दायरा यह है कि न्यायालय को यह देखना होगा कि व्यक्तिगत विधि के तहत अप्राप्तवय के कल्याण को ध्यान में रखते हुए विभिन्न आवेदकों में से किसे संरक्षक नियुक्त होने का अधिमान्य अधिकार प्राप्त है। न्यायालय को केवल अप्राप्तवय के कल्याण के एकमात्र विचार से मार्गदर्शित होना चाहिए।"

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

(13) उच्चतम न्यायालय ने 2013 एआईआर (एससी) 102 **(गायत्री बजाज बनाम जितेन भल्ला)** के कंडिका 12 और 13 में निम्नानुसार अवधारित किया है:

"12. अवयस्कों की अभिरक्षा से संबंधित विधि पर इस न्यायालय द्वारा निर्णयों की एक श्रृंखला में व्यापक विचार-विमर्श किया गया है। गौरव नागपाल बनाम सुमेन्शा नागपाल, 2009 1 एस सी सी 42 में, इस संबंध में अंग्रेजी और अमेरिकी विधि के सिद्धांतों पर इस न्यायालय द्वारा विचार किया गया और यह माना गया कि भारत में विधिक स्थिति किसी भी तरह से भिन्न नहीं है। बॉम्बे उच्च न्यायालय के निर्णय सरस्वती बाई श्रीपाद वेद बनाम

श्रीपाद वासन्जी वेद, 1941 एआईआर (बो) 103; रोजी जैकब बनाम जैकब ए. चक्रमक्कल, 1973 1 एस सी सी 840 और थर्टी होशी डोलिका बनाम होशियाम शावदक्ष डोलिका, 1982 2 एस सी सी 544 का संज्ञान लेते हुए, इस न्यायालय ने अंततः अनुच्छेद 50 और 51 में यह निष्कर्ष निकाला कि:

50. जब न्यायालय के समक्ष माता-पिता द्वारा परस्पर विरोधी मांगें रखी जाती हैं, तो हर बार उसे उन मांगों का औचित्य सिद्ध करना होता है। न्यायालय को न केवल विधिक आधार पर इस विषय को देखना है, बल्कि ऐसे मामलों में उन विषयों को तय करने के लिए मानवीय दृष्टिकोण भी सुसंगत हैं। न्यायालय तब इस बात पर जोर नहीं देता कि पक्षकार क्या कहते हैं, बल्कि उसे ऐसे क्षेत्राधिकार का प्रयोग करना होता है जिसका उद्देश्य अप्राप्तवय का कल्याण हो। जैसा कि हाल ही में **मौसमी मोइत्रा गांगुली** के मामले में देखा गया है, न्यायालय को बालक के सामान्य संतोष, स्वास्थ्य, शिक्षा, बौद्धिक विकास और अनुकूल परिवेश को उचित महत्व देना चाहिए, परंतु भौतिक सुख-सुविधाओं से ऊपर, नैतिक और सदाचारिक मूल्यों पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। वे अन्यों की तुलना में कम महत्वपूर्ण नहीं, बल्कि समान रूप से महत्वपूर्ण हैं।

51. अधिनियम की धारा 13 में प्रयुक्त शब्द "कल्याण" का शाब्दिक अर्थ लगाया जाना चाहिए और इसे इसके व्यापक अर्थ में लिया जाना चाहिए। न्यायालय के लिए बालक के शारीरिक सुस्वास्थ्य के साथ-साथ उसका नैतिक और चारित्रिक कल्याण भी महत्वपूर्ण होना चाहिए। यद्यपि माता-पिता और संरक्षकों के अधिकारों को नियंत्रित करने वाली विशेष संविधियों के उपबंधों पर विचार किया जा सकता है, ऐसे मामलों में न्यायालय द्वारा राज्य का अभिभावक का क्षेत्राधिकार के प्रयोग में कोई भी बात बाधा नहीं बन सकती।"

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

(14) आक्षेपित आदेश के मात्र अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि विचारण न्यायालय अधिनियम, 1890 की धारा 25(1) के तहत आवेदन पर विचार करते और उसे स्वीकार करते समय प्रतिपाल्य पूनम प्रकाश के कल्याण पर विचार करने में विफल रहा है, भले ही अपीलार्थी न्यायालय द्वारा जारी सम्मन के अनुसरण में उपस्थित होने में विफल रहा, और न ही उसने जवाब दाखिल किया और न ही कोई साक्ष्य प्रस्तुत किया, परंतु उस स्थिति में भी विचारण न्यायालय बालक/प्रतिपाल्य के कल्याण पर विचार करने के लिए कर्तव्यबद्ध था।

(15) 2008(9) एस सी सी **413 (नील रतन कुंडू और अन्य बनाम अभिजीत कुंडू)** में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अभिरक्षा के मामले की सुनवाई करते समय न्यायालय न तो संविधियों से, न ही साक्ष्य या प्रक्रिया के कठोर नियमों से और न ही न्याय दृष्टांतो से बाध्य है, जो निम्नानुसार है:

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

"52. हमारे निर्णय में, बालक की अभिरक्षा से संबंधित विधि काफी हद तक सुस्थापित है और वह यह है: किसी अप्राप्तवय की अभिरक्षा के कठिन और जटिल प्रश्न का निर्णय करते समय, विधि न्यायालय को संबंधित संविधियों और उससे उत्पन्न होने वाले अधिकारों को ध्यान में रखना चाहिए। परंतु ऐसे मामलों का निर्णय केवल विधिक प्रावधानों की व्याख्या करके नहीं किया जा सकता। यह एक मानवीय समस्या है और इसे मानवीय संस्पर्श के साथ हल करने की आवश्यकता है। अभिरक्षा के मामलों की सुनवाई करते समय न्यायालय न तो संविधियों से, न ही साक्ष्य या प्रक्रिया के कठोर नियमों से और न ही न्याय दृष्टांतो से बाध्य है। अप्राप्तवय के उचित संरक्षक का चयन करने में, बालक का कल्याण और उसकी भलाई सर्वोपरि विचार होना चाहिए। संरक्षक का चयन करते समय, न्यायालय राज्य के अभिभावक क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर रहा होता है और उससे यह अपेक्षा की जाती है, बल्कि वह बाध्य है कि वह बालक के सामान्य आराम, संतोष, स्वास्थ्य, शिक्षा, बौद्धिक विकास और अनुकूल परिवेश को उचित महत्व दे। परंतु भौतिक

सुख-सुविधाओं से ऊपर, नैतिक और सदाचारिक मूल्यों की अनदेखी नहीं की जा सकती। वे समान रूप से, या हम कह सकते हैं कि, और भी अधिक महत्वपूर्ण, आवश्यक और अपरिहार्य विचार हैं। यदि अप्राप्तवय अपनी सुविचारित प्राथमिकता या निर्णय व्यक्त करने के लिए पर्याप्त आयु का है, तो न्यायालय को ऐसी प्राथमिकता पर भी विचार करना चाहिए, हालांकि अंतिम निर्णय न्यायालय पर निर्भर होना चाहिए कि अप्राप्तवय के कल्याण के लिए क्या सहायक है।"

(16) (2012) 5 एस सी सी **265 (सी. एन. रमप्पा गौड़ा बनाम सी. सी. चंद्रशेखर गौड़ा (मृत) विधिक प्रतिनिधियों द्वारा एवं अन्य)** में उच्चतम न्यायालय ने उन परिस्थितियों पर विचार करते हुए जहाँ प्रतिवादी द्वारा लिखित कथन दाखिल नहीं किया गया था, यह माना कि पूर्ण अभिवचनों के अभाव में या केवल एक पक्ष के अभिवचनों की उपस्थिति में भी न्याय-निर्णयन करना न्यायालय का कर्तव्य है और कंडिका 18 में निम्नानुसार अवधारित किया गया:

WebCopy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

"18. विद्वान अधिवक्ता ने इस संदर्भ में विशेष रूप से इस न्यायालय के **बलराज तनेजा** मामले में प्रतिपरीक्षण सिद्धांतों का अवलंब लिया है जो अत्यंत महत्वपूर्ण और मूल्यवान हैं, जिसमें निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया था: (एस सी सी पृ. 410, कंडिका 29)

'29. जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, न्यायालय को प्रतिवादी द्वारा अपने लिखित कथन में किए गए किसी तथ्य के स्वीकारोक्ति पर आँख मूंदकर कार्य नहीं करना चाहिए, और न ही न्यायालय को केवल इसलिए आँख मूंदकर निर्णय पारित करने की कार्यवाही नहीं करना चाहिए क्योंकि प्रतिवादी ने न्यायालय में वादी द्वारा प्रस्तुत वाद-पत्र में बताए गए तथ्यों का खंडन करते हुए लिखित कथन दाखिल नहीं किया है। विशेष रूप से उस मामले में जहाँ प्रतिवादी द्वारा लिखित कथन दाखिल नहीं किया गया है, न्यायालय को व्यवहार प्रक्रिया संहिता के आदेश 8 नियम 10 के तहत कार्यवाही करने में थोड़ा सतर्क

रहना चाहिए। प्रतिवादी के विरुद्ध निर्णय पारित करने से पहले उसे यह देखना चाहिए कि यदि वाद-पत्र में बताए गए तथ्यों को स्वीकार कर लिया गया मान लिया जाए, तब भी क्या वादी को वाद-पत्र में वर्णित किसी भी तथ्य को सिद्ध करने की आवश्यकता के बिना उसके पक्ष में निर्णय पारित किया जा सकता है। यह न्यायालय के संतोष का विषय है और इसलिए, केवल इस बात से संतुष्ट होने पर कि कल्पित स्वीकारोक्ति के कारण किसी तथ्य को सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है, न्यायालय आसानी से उस प्रतिवादी के विरुद्ध निर्णय पारित कर सकता है जिसने लिखित कथन दाखिल नहीं किया है। परंतु यदि वाद-पत्र स्वयं यह संकेत देता है कि मामले में तथ्य के विवादित प्रश्न शामिल हैं जिनके संबंध में वाद-पत्र में ही दो अलग-अलग अभिवचन किये गए हैं, तो न्यायालय के लिए तथ्यों को सिद्ध करने के लिए वादी की आवश्यकता के बिना निर्णय पारित करना सुरक्षित नहीं होगा ताकि तथ्यात्मक विप्रकरण का निराकरण किया जा सके। ऐसा मामला आदेश 8 के नियम 5 के उप-नियम (2) में प्रयुक्त वाक्यांश 'न्यायालय अपने विवेक से, ऐसे किसी भी तथ्य को सिद्ध करने की अपेक्षा कर सकता है' या आदेश 8 के नियम 10 में प्रयुक्त वाक्यांश 'प्रकरण के संबंध में ऐसा आदेश दे सकता है जैसा वह उचित समझे' के अंतर्गत आएगा।'"

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

(17) अतः, इस न्यायालय की सुविचारित राय में, विचारण न्यायालय ने बालक के कल्याण पर विचार किए बिना आवेदन स्वीकार करने में एक गंभीर विधिक त्रुटि की है, जो कि प्रतिपाल्य की अभिरक्षा प्रदान करने के लिए सर्वोपरि विचार होना चाहिए था।

(18) परिणामस्वरूप, संरक्षक और प्रतिपाल्य प्रकरण क्रमांक 02/2004 में पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 10.02.2005 को अपास्त किया जाता है। मामले को अधिनियम, 1890 की धारा 4(5)(ख)(ii) के अर्थ के भीतर संबंधित जिला न्यायाधीश/जिला न्यायालय को नए सिरे से निर्णय के लिए प्रतिप्रेषित किया जाता है, ताकि उपरोक्त उद्धृत मामलों में उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिपरीक्षण

सिद्धान्तों का पालन करते हुए, पक्षकारों को सूचना देने के पश्चात, इस आदेश की प्रति प्राप्त होने की तिथि से तीन माह की अवधि के भीतर विधि के अनुसार कड़ाई से निर्णय लिया जा सके।

(19) अपील को उपरोक्त सीमा तक स्वीकार किया जाता है। वाद-व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं किया जा रहा है।

सही**/-**

(संजय के. अग्रवाल)

न्यायाधीश

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

अस्वीकरणः हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुप्रकरण पक्षकारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा। समस्त कार्यालयीन एवं व्यवहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेजी स्वरुप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।

Translated By Smt. Vijaylaxmi Pradhan [Adv.]